ओ३म्

'स्वाध्याय और ईश्वरोपसना'

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

स्वाध्याय का ईश्वरोपसना से क्या कोई सम्बन्ध है? इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है क्योंकि मनुष्य के जीवन से इसका गहरा सम्बन्ध है। प्रायः सभी मतों के लोग ईश्वरोपासना करते हैं परन्तु सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय से पृथक रहते हैं। उन्हें परिवार व अन्यत्र जो उपासना बता दी जाती है, उसी को वह अपना लेते हैं। इन बन्धुओं में अपनी कोई ऊहा व चिन्तन नहीं होता कि वह जो करते हैं वह उचित है या नहीं? विगत एक दो दशकों में देश में अनेक नये मत उत्पन्न हुए हैं। बहुत से मत पहले से भी हैं। वर्तमान में नये नये मतों की उत्पत्ति का क्रम जारी है और आगे भी ऐसा ही चलता रहेगा। सभी मतों में कुछ पद्धतियां समान हैं और कुछ में परस्पर अन्तर भी हैं। सभी में यह परम्परा व मान्यता है कि उनके गुरु जी ने जो कह दिया अथवा दो चार पीढ़ी से जो होता आ रहा है, वही ठीक है, उसे बदला नहीं जा सकता। ऐसे बन्धुओं में अपना विवेक नहीं होता कि वह उपासना जैसे विषय में अपनी कोई स्वतन्त्र राय व मान्यता निर्धारित कर सकें। हमें लगता है कि ऐसे व्यक्तियों का सुधार होना कठिन है। यदि मूल में जाते हैं तो इसका कारण इन बन्धुओं की अविद्या तो सिद्ध होती ही है, इसके साथ ही इनके मतों के आचार्यों की अविद्या भी सिद्ध होती है। यदि सबकी अविद्या दूर हो जाये तो फिर एक उपासना पद्धति का निर्धारण करने में कठिनाई नहीं होगी। मुख्य प्रश्न यही है कि उपासना विषयक अविद्या को किस प्रकार दूर किया जाये?

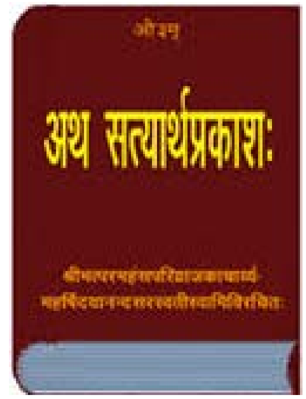

अविद्या को सामान्यतः अज्ञान के नाम से जाना जाता है। अविद्या को दूर करने के लिए सबसे आवश्यक गुण यह है कि मनुष्य को पूर्वाग्रहों से मुक्त होना चाहिये। जो व्यक्ति यह मान बैठा है कि वह जो कर रहा है वह ठीक है तो फिर ऐसे व्यक्ति को सुधारना कठिन है। अविद्या व अज्ञान दूर करने का सबसे सरल व सार्थक प्रभावशाली उपाय किसी वैदिक विद्वान सद्गुरू से उपदेश ग्रहण करना है एवं सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय करना है। पहला कार्य तो मनुष्य को पूर्वाग्रहों से मुक्त होना होगा। दूसरा कार्य यह करना है कि उसे वेद व वैदिक साहित्य का निष्पक्ष व जिज्ञासु के रूप में अध्ययन करना। अध्ययन करते हुए जिस बात को पढ़ा जाये उस पर पक्ष विपक्ष के रूप में स्वयं सभी प्रकार के सम्भावित प्रश्न उत्पन्न कर उसका उत्तर जानने का प्रयास करना चाहिये। इस प्रकार से यदि स्वाध्याय वा अध्ययन करेंगे, तो धीरे धीरे मनुष्य को सत्य व असत्य का ज्ञान व स्वरूप स्पष्ट होता जायेगा। उदाहरण के लिए हम 'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं जिसमें सभी प्रकार की धार्मिक मान्यताओं को प्रस्तुत करते हुए वेदमत भी दिया गया है तथा इसकी पुष्टि में प्रमाण भी दिये गये हैं। इसी प्रकार इसके कुछ समुल्लासों में अन्य मत-मतान्तरों की मान्यताओं को प्रस्तुत कर उन पर विचार किया गया है और उनकी सत्यता वा असत्यता की परीक्षा निष्पक्ष भाव से, सत्य के निर्णयार्थ की गई है। इन सबको पढ़ते हुए हम अपने मन में सत्यार्थ प्रकाश में पुष्ट मान्यताओं पर विपक्षी बन कर भी विचार कर सकते हैं। यदि हम सफल होते हैं तो हमें अपने विचार व मान्यताओं को वैदिक व आर्य विद्वानों के सम्मुख रखकर अपने विचारों का मण्डन करना चाहिये और सत्यार्थप्रकाश समर्थित व स्वीकार्य विचारों का खण्डन करना चाहिये। यहां हमारा यह दायित्व है कि हम निष्पक्ष भाव से अपनी बात कहें व आर्य व वैदिक विद्वानों की बातें व स्पष्टीकारण एवं समाधानों को धैर्य व निष्पक्ष भाव से सुन कर स्वयं सत्य व असत्य का निर्णय करें। हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि एक ही विषय में में दो परस्पर मान्यतायें कदापि सत्य नहीं हो सकती। जैसे यदि ईश्वर निराकार है तो इसका विरोधी विचार साकार सत्य नहीं हो सकता। इसी प्रकार सर्वव्यापक पदार्थ एकदेशी नहीं हो सकता। असीम असीम ही रहेगा, ससीम नहीं हो सकता।

यदि ईश्वर न्यायकारी है तो फिर वह नियमों को तोड़ कर किसी के पाप व गुनाह मुआफ व क्षमा नहीं कर सकता। यदि क्षमा कर देता है तो वह न्यायकारी सिद्ध नहीं होगा। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। उसने यह संसार बनाया है। संसार बनाने के लिए उसे अवतार लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी तो संसार बनाने के बाद किसी दुष्ट को मारने व प्रताड़ित करने के लिए भी उसे अवतार की आवश्यकता नहीं है। वह अपने नियमों व सामथ्र्य के अनुसार उसका वध कर सकता है। आजकल देश व संसार में दुष्टों की क्या कोई कमी है? फिर अवतार क्यों नहीं हो रहे हं? क्या ईश्वर ने अवतार लेने की शक्ति समाप्त हो गई है? वस्तु स्थिति यह है कि ईश्वर जिस प्रकार किसी जीव को जन्म देता है, उसी प्रकार उसे मार भी सकता है और मारता आ रहा है। एक दिन में विश्व में लाखों लोग मरते हैं। इन्हें कौन मारता है। हमारा तात्पर्य है कि मनुष्यों के शरीरों से उनकी आत्माओं को कौन पृथक करता है। इसका एक ही उत्तर है कि ईश्वर करता है। प्रतिदिन मनुष्य व अन्य प्राणी योनियों में करोड़ों आत्माओं को ईश्वर जन्म देता है और उतनों की ही मृत्यु उसके द्वारा उसके विधान के अनुसार होती है। अतः एक दिन में लाखों करोड़ों मनुष्य व प्राणियों को मारने वाले ईश्वर को किसी एक दुष्ट व महादुष्ट को मारने के लिए अवतार लेना पड़ता हो, यह मान्यता सत्य सिद्ध नहीं होती।

ऋषि दयानन्द (1825-1883) **के समय में वेद की तो बात ही क्या, उपनिषद, दर्शन, मनुस्मृति के हिन्दी भाषा के भाष्य व अनुवाद कहीं सुलभ नहीं थे। महर्षि दयानन्द ने महाभारत काल के बाद पहली बार वेदों के सत्यार्थ वेदभाष्य के रूप में प्रस्तुत किये। उनकी मृत्यु के बाद उनके अनुयायी विद्वानों ने भी वेदों के हिन्दी भाष्य तैयार कर प्रकाशित कराये। दर्शनों व उपनिषदों के अनेक विद्वानों ने इन पर टिकायें लिखी। महाभारत व रामायण पर भी अनेक ग्रन्थ आर्य विद्वानों ने तैयार कर प्रकाशित कराये। वेदों के स्वाध्याय की प्रचुर सामग्री भी भिन्न भिन्न विषयों व नामों से अनेक विद्वानों के द्वारा तैयार होकर प्रकशित हुई। विगत लगभग एक से डेढ़ शताब्दी से आर्य विद्वानों ने हिन्दी, संस्कृत, उर्दू व अंग्रेजी ने प्रभूत वैदिक साहित्य का सृजन कर सामान्य पाठकों तक पहुंचाया जिसका सुपरिणाम सामने है। आज जो बातें अन्य मतों के बड़े बड़े पण्डित व विद्वान नहीं जानते हैं उन्हें आर्यसमाज का एक साधारण पाठक व अनुयायी जानता है व अपने जीवन में उसका व्यवहार भी करता है। घर घर में हवन होते हैं। सामूहिक सन्ध्या होने के साथ आर्य ग्रन्थों का स्वाध्याय भी होता है। ईश्वर की उपासना का अर्थ है कि ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को जानकर मनुष्यों व सभी प्राणियों पर उसके अनेकानेक उपकारों को स्मरण कर कृतज्ञता व धन्यवाद व्यक्त करना। महर्षि दयानन्द ने ईश्वरोपासना के लिए “सन्ध्या” नाम की पुस्तक लिखी है जिसमें आचमन, इन्द्रियस्पर्श, मार्जन, प्राणायाम, अघमर्षण, मनसा परिक्रमा, उपस्थान, गायत्री, समर्पण और नमस्कार मन्त्रों का विधान कर सभी मन्त्रों के हिन्दी में अर्थों को भी प्रस्तुत किया है। मन्त्रों व इनके अर्थों को पढ़कर स्वाध्यायकत्र्ता व उपासक ईश्वरोपासना से पूर्णतः परिचित हो जाता है। योगदर्शन पर भी महात्मा नारायण स्वामी, आचार्य उदयवीर शास्त्री, पं. राजवीर शास्त्री पं. आर्यमुनि आदि अनेक विद्वानों ने हिन्दी भाषा में टीकायें लिखी हैं जिनका अध्ययन कर उपासना के विषय में परिचित हुआ जा सकता है। महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि में स्तुति प्रार्थना व उपासनों के आठ मन्त्रों सहित स्वस्तिवाचन व शान्तिकरण के मन्त्रों का जो विधान किया है वह भी उपासना में सहायक होता है। इन सबके साथ वेदों का स्वाध्याय व वैदिक ग्रन्थ वेदमंजरी, ऋग्वेद ज्योति, अथर्ववेद ज्योति, वैदिक विनय, स्वाध्याय सन्दोह, श्रुति सौरभ, सोमसरोवर सहित सामवेद पर विश्वनाथ विद्यालंकार एवं आचार्य रामनाथ वेदालंकार आदि विद्वरानों के ग्रन्थों का अध्ययन कर भी उपासना व भक्ति का पूर्ण ज्ञान व विधि जानी जा सकती है। इनसे अर्जित ज्ञान से ईश्वर की उपासना करने से मनुष्य उपासना के फल ईश्वर से प्रीति, दुर्गुणों का छूटना, सद्गुणों का आधान, ईश्वर के ध्यान में लम्बे समय तक स्थिति आदि अनेक लाभ प्राप्त होते हैं। महर्षि दयानन्द ने उपासना का फल बताते हुए यह भी कहा है कि इतना ही नहीं अपितु उपासना से अनेक लाभ होते हैं। यथा अग्नि के समीप जाने से जिस प्रकार से शीत की निवृत्ति होती है उसी प्रकार ईश्वरोपासना से से मनुष्य के दुर्गुण, दुव्र्यस्न आदि छूटकर उसके सद्गुणों में वृद्धि होती है। आत्मा का बल इतना बढ़ता है कि पहाड़ के समान दुःख प्राप्त होने पर भी वह घबराता नहीं है, क्या यह छोटी बात है? उन्होंने यह**

भी बताया है कि जो ईश्वर की उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख होता है। ऐसा इसलिये कि मनुष्य द्वारा ईश्वर के उपकारों को भुला देने से वह कृतघ्न व महामूर्ख सिद्ध होता है। बिना स्वाध्याय व सत्योपदेश के उपासना का मर्म नहीं जाना जा सकता। इस दृष्टि से आर्यसमाज के अनुयायी भाग्यशाली हैं जिनके पास स्वाध्याय के अनेक ग्रन्थ उपलब्घ हैं और प्रायः सभी ऋषि भक्त आर्य स्वाध्याय करते हैं।

हमने विषय पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। आशा है कि पाठकों को इससे लाभ होगा। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

-मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला-2
देहरादून-248001
फोनः09412985121

ओ३म्

‘ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में सामाजिक एवं राजनैतिक अवस्था’

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

पंजाब केसरी लाला लाजपत राय जी का देश की आजादी के आन्दोलन में प्रमुख योगदान था। आप आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के आरम्भिक शिष्यों में थे। आपने लिखा है कि आर्यसमाज मेरी माता है और महर्षि दयानन्द मेरे धर्म पिता हैं। आपने महर्षि दयानन्द का उर्दू भाषा में जीवन चरित भी लिखा है। इस जीवन चरित का पण्डित गोपालदास देवगुण शर्मा, क्लर्क डैडलैटर आफिस, लाहौर द्वारा किया गया हिन्दी अनुवाद लगभग 60-70 **वर्ष पूर्व सार्वदेशिक साप्ताहिक पत्र के एक विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ था। अनुदित पुस्तक का प्राक्कथन लाला लाजपतराय जी ने स्वयं लिखा है। इस पुस्तक की भूमिका** 88 **पृष्ठों की है जिसे लाला जी ने अनेक उपशीर्षक देकर लिखा है। भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है एवं सुधी पाठकों द्वारा पढ़ने योग्य है। इस भूमिका में लाला जी ने उपशीर्षक ‘ब्राह्म ग्रन्थों के समय में सामाजिक और राजनैतिक अवस्था’ से भी महत्वपूर्ण एवं सारगर्भित विचार व्यक्त किये हैं। इसी को महत्वपूर्ण जानकर हम इस सामग्री को पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।**

‘‘उस (ब्राह्मण ग्रन्थों के) समय की सामाजिक और राजनैतिक अवस्था का चित्र हमको रामायण और महाभारत से मिलता है। रामायण का सामाजिक चित्र सच पूछो तो सामाजिक स्वर्ग का नमूना दिखलाता है। सचमुच उस समय भारत भूमि स्वर्ग भूमि थी। यह धरा कर्म भूमि थी और धर्म भूमि भी थी। प्रत्येक मनुष्य माता पिता, पुत्र वा पुत्री, पति व स्त्री, राजा व प्रजा, तथा गुरु और शिष्य अपने अपने उद्देश्य जानते थे और उन पर आचरण करते थे। सारे देश में आर्यों का राज्य था, मनुष्यमात्र उत्तम अवस्था में थे, और निश्चिन्त थे, चारों ओर राज्य कर रहे थे, पश्चिमोत्तर में लगभग सारा अफगान स्थान और क्या जाने कुछ तुरकस्थान का भाग आर्यों की राजधानी में था। भारतवर्ष धन की खान थी और मालामाल था। न किसी के धावे का भय था, और न किसी अन्य जाति की चिन्ता थी। वर्णों के स्वाभाविक विभाग जिसने अभी अपने पूर्ण पावं नहीं जमाये थे, लोगों को अपने अपने धर्म कर्म पर नियत रखा हुआ था। प्रत्येक मनुष्य अपने धर्म और स्वभावानुकूल जातीय और देश के कामों में भाग

लेता था। वह ऐसा समय था कि जिसने शस्त्र विद्या में द्रोणाचार्य जैसे अद्वितीय गुरु और अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर और कर्ण जैसे सुयोग्य प्रसिद्ध योद्धा धनुष विद्याऽभिज्ञ मल्ल, और भीष्म पितामह जैसे क्षत्रिय उत्पन्न किये। वह ऐसा समय था कि जिसने लक्ष्मण और भरत जैसे भाई, श्री रामचन्द्र जी सरीखे पुत्र और सीता महारानी जैसी स्त्रियां उत्पन्न कीं। यह वह समय था जिसमें पाणिनी जैसे वैयाकरणी उत्पन्न हुए जिसके सम्मुख मानों भाषा हाथ बांधे हुए खड़ी थी। यदि एक पाणिनी ही इस समय में उत्पन्न होता तो वही उस समय के संसार के इतिहास में प्रसिद्ध समय बनाने के लिए बहुत था। क्योंकि संसार में उस मुनि सरीखा व्याकरण वक्ता व कर्ता फिर दोबारा उत्पन्न नहीं हुआ। परन्तु ब्राह्मणों और उपनिषदों का समय केवल पाणिनी मुनि से ही प्रसिद्ध नहीं, किन्तु विद्या की अन्य शाखाओं मंे भी वैसे ही वक्ता उत्पन्न हुए। क्या ज्योतिष विद्या, क्या उकलीदस (बीज गणित), क्या राग विद्या और क्या फिलासफी, जिधर दृष्टि करो उधर ही इस समय से तुलना नहीं रखते। और सब को छोड़ दें तो क्या धर्म और भक्ति के विषय में उपनिषदों के कर्ता ही अपनी उत्पत्ति के समय अपने देश के नाम को सदैव चिरस्थाई बनाने के लिये क्या कम है? उपनिषद क्या हैं मानों ज्ञान की खानें हैं। उपनिषदों के ये वाक्य हैं, या अनमोल रत्न हैं, जो संसार मात्र के साहित्य में अपनी समानता वा तुलना नहीं रखते। छोटे छोटे संक्षिप्त से वाक्य ऐसे बुमूल्य रत्न हैं कि अब तक दुनिया उनकी झलक से प्रकाशमान होती है, मानो कि ज्योति के श्रोत निज किरणों से आत्मा के अज्ञानांधकार को दूर करते हैं। और साथ ही व्याकुल और संसार से विरक्त हुए मनुष्यों के मन को अमृत दान करके शान्ति और शीतलता प्रदान करते हैं।

दूसरी ओर देखो तो धर्म शास्त्र की शाखा में विचित्र आत्मायें काम करती नजर आती हैं। सूत्र ग्रन्थ भी अद्भुत शास्त्र हैं, जो दुनिया के लिये नियम बनाते हैं, जीवन से मृत्यु तक मनुष्य की आयु को धर्म्म मर्यादा पर चलाने के लिये सविस्तार नियम बनाते हैं। सार यह है कि जिधर देखो आर्य जन आत्मा परमात्मा के ज्ञान भण्डार से आनन्द पा रहे हैं। सबका आश्रय वेद है। वैयाकरणी हो, चाहे गणितशास्त्रभिज्ञ हो, चाहे धर्म शास्त्र का रचयिता हो, चाहे उपनिषदों का कर्ता हो, सब वेदों के सहारे अपनी बुद्धि को प्रकाशित कर रहे हैं। जो कुछ लिखा गया, जो कुछ किया गया, जो कुछ बनाया गया, सब वेदों के सहारे से बनाया गया। क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य और क्या शूद्र, सब ही वेदों का आश्रय ले कर्म करते हुए संसार सागर से पार जाने का यत्न करते हैं।

ऋषि, महर्षि, विद्वान, ज्ञानी पुरुष वेदों के अर्थों पर झगड़ते हैं, परन्तु वेदों से विमुख होने का कोई साहस नहीं करता, वर्ण प्रणाली को स्थित रखने का यत्न हो रहा है परन्तु क्यों? जो वेदों का सार समस्त जगत् में विख्यात है, इसलिये इस यत्न से सिद्ध नहीं होता। लोक कर्मानुसार अपने वर्ण व्यत्यय करते हैं, ऊंचे नीचे जाते हैं, और नीचे वाले ऊपर चले जाते हैं, शूद्र की सन्तान अपने कर्मों से ब्राह्मण पदवी को प्राप्त हो जाती है, और ब्राह्मण सन्तान अपने कर्मों से पतित होकर शूद्र बन जाती है।”

लाला जी द्वारा प्रस्तुत इस विवरण से उनके इतिहास विषयक गहरे ज्ञान का परिचय मिलता है। हम आशा करते हैं कि पाठक इस लेख को पसन्द करेंगे। खेद है कि हमने अपनी सर्वोत्तम संस्कृति को विस्मृत कर दिया है और पश्चिम की भौतिकवादी अनिष्ट बातों की ओर आंखे मूंद कर दौड़ लगा रहे हैं। महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के एक नियम में कहा है कि मनुष्य को सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। होना तो यह चाहिये था कि हम भारतीय संस्कृति का प्रचार प्रसार करते जिससे विदेशी हमारी संस्कृति को अपनाते परन्तु हमने इसके विपरीत अपनी संस्कृति को छोड़कर विदेशी अपसंस्कृति को अपना लिया है। इसके परिणाम भी सामने आ रहे हैं। यदि हम विश्व में सुख व शान्ति की स्थापना करना चाहते हैं तो हमें वेदों की ओर लौटना होगा। नहीं लौटेंगे तो समाज में जो अनिष्ट हो रहा है वह बढ़ता ही जायेगा। इसी के साथ हम इस लेख को पाठकों को भेंट करते हैं।

-मनमोहन कुमार आर्य

पताः 196 चुक्खूवाला-2

देहरादून-248001
फोनः09412985121